ESSENCE - International Journal for Environmental Rehabilitation and Conservation

Volume V: No. 2 2014 [99 – 101] [ISSN 0975 - 6272]

[www.essence-journal.com]

Proceedings of National Conference

"Environmental Conservation and Clean India Programme" December 2014, India

साहित्यिक परिवेश में पर्यावरण

Vikas Kumar

Received: October 01, 2014 | **Accepted**: December 10, 2014 | **Online**: December 31, 2014

आधुनिक परिदृश्य में जिस तरह से भौतिक विकास एवं संसाधनों की प्रतिस्पर्धा विश्व में उत्पन्न हुई है, उससे स्वच्छ पर्यावरण की कल्पना निराधार है। विकसित राष्ट्र औद्योगिकरण की अन्धी दौड़ में पर्यावरण के साथ खिलवाड़ कर रहे हैं। हमने कीटनाशकों एवं उर्वरकों के अत्यधिक प्रयोग से खाद्यान्नों की मात्रा एक ओर बढ़ाई है तो दूसरी ओर मिटटी के जीवाश्मों को समाप्त किया है, जिससे स्वास्थ्य संवर्धक तत्व क्षीण हो रहे हैं।

भारतीय साहित्य वेद , वेदांग, उपनिषद् आदि सभी पर्यावरण के संरक्षण पर बल देते रहे हैं। हिन्दी साहित्यिक परिवेश विशेषकर छायावाद में प्रकृति कवि की सहचरी रही है। छायावादी कवियों का प्रकृति चित्रण हमें प्रकृति की सन्निकटता तो प्राप्त कराता ही है, साथ ही पर्यावरण और प्रकृति के प्रति सुकोमल भावनाओं से युक्त होने का संदेश भी देता है। यदि हम प्रकृति से मित्रवत् व्यवहार करते हैं तथा पर्यावरण को शुद्ध रखने में सहयोग करते हैं तो प्रकृति वास्तव में सहचरी की भाँति सुख–दुःख, हर्ष–विषाद आदि में हमारे साथ रहती है। छायावादी कवियों जयशंकर प्रसाद ने 'कामायनी' में और सुमित्रा नन्दन पन्त ने 'चिदम्बरा' में ऐसे अनेक उदाहरण प्रस्तुत किये हैं। पर्यावरण संरक्षण के लिए हमें अपने अतीत का चिन्तन करना होगा। कतिपय नियमों का पालन करना होगा तथा प्रकृति का स्वार्थवश दोहन न करके उससे मित्रवत् व्यवहार करना होगा। प्रकृति के अनुसार आचरण करके ही हम पर्यावरण को सुरक्षित कर सकतें हैं और पर्यावरण सुरक्षित होगा तभी हमारा जीवन भी सुरक्षित रह पायेगा।

''आनन्दमठ'' में प्रसिद्ध बंगला कवि बंकिम चन्द्र चटर्जी ने भारतीय प्राकृतिक सौन्दर्य को लिपिबद्ध करते हुए कहा है :–

सुजलाम्, सुफलाम, मलयज् शीतलाम्
शस्यश्यामलम, मातरम् ।

इसमें जिस भारत का चित्र अंकित किया गया है। उसमें पर्यावरण संरक्षण की समग्र जीवन्तता अभिलक्षित होती है। परन्तु आधुनिक परिदृश्य में जिस तरह से भौतिक विकास एवं संसाधनों की प्रतिस्पर्धा विश्व में उत्पन्न हुई हैं। उससे स्वच्छ पर्यावरण की कल्पना भी निराधार है। विकसित राष्ट्र औद्योगिकरण की अन्धी दौड़ में पर्यावरण के साथ खिलवाड़ कर रहे हैं। वैज्ञानिक प्रयासों से भौतिक संसाधनों का विकास अवश्य हुआ है। परन्तु

For correspondence

Dept. of Hindi, J.V. Jain College, Saharanpur, India

दूरगामी विनाश के बादल क्षितिज में दृश्यमान हैं। हमने कीटनाशकों एवं उर्वरकों के अत्यधिक प्रयोग से खाद्यान्नों की मात्रा एक ओर बढ़ाई है तो दूसरी ओर मिटटी के जीवाश्मों को समाप्त किया है जिससे स्वास्थ्य संवर्धक तत्व क्षीण हो रहे हैं। यह तथ्य निर्विवाद रूप से सत्य है कि विश्व की जनसंख्या तेजी से बढ़ रही है। जिसकी खाद्यान्न पूर्ति स्वयं में एक विकराल समस्या है। इस समस्या के समाधान हेतु पूरे विश्व का अत्यन्त तीव्रता से औद्योगिकरण हुआ है। जिस कारण वायु प्रदूषण, जल प्रदूषण, ध्वनि प्रदूषण, मृदा प्रदूषण आदि अनेक तत्जन्य विकार भी उतनी ही गति से प्रभावी हो रहे हैं। जिनका निराकरण स्वस्थ समाज के लिए नितान्त आवश्यक है।

भारतीय साहित्य वेद, वेदांग, उपनिषद इत्यादि सभी पर्यावरण के संरक्षण पर बल देते हैं। हिन्दी साहित्यिक परिवेश विशेषकर छायावाद में प्रकृति कवि की सहचरी रही है। छायावादी कवियों का प्रकृति चित्रण हमें प्रकृति की सन्निकटता तो प्राप्त कराता ही है। साथ ही साथ वह पर्यावरण और प्रकृति के प्रति सुकोमल भावनाओं से युक्त होने का संदेश भी देता है। छायावादी कवि प्रकृति में सजीव सत्ता के दर्शन करते हैं। उन्हें प्रकृति मानव व्यापारों की भांति ही जडता से सर्वथा दूर चेतन व्यापारों से सम्पृक्त दिखाई पडती है। इसी कारण वे प्रकृति में भी हास, विलास, रूदन, शोक, आनन्द, उल्लास, आदि के चित्र अंकित किया करते हैं। यदि हम प्रकृति से मित्रवत व्यवहार करते हैं तथा पर्यावरण को शुद्ध रखने में सहयोग करते हैं तो प्रकृति वास्तव में सहचरी की भांति दुःख , सुख, हर्ष , विषाद इत्यादि में हमारे साथ रहती हैं। हिन्दी साहित्य में प्रकृति के सुकुमार कवि के रूप में प्रसिद्ध सुमित्रा नन्दन पन्त तो प्रकृति सौन्दर्य के सम्मुख नारी सौन्दर्य का भी तिरस्कार करते हुए कहते हैं–

छोड़ द्रुमों की मृदृ छाया, तोड़ प्रकृति से भी माया।

बाले!तेरे बाल जाल में , कैसे उलझा दूं लोचन।

भूल अभी से इस जग को।

कोयल का वह कोमल बोल , मधुकर की वीणा अनमोल।

कह तब तेरे ही प्रिय स्वर से , कैसे भर लूं सजनी श्रवण।

भूल अभी से इस जग को।

साहित्य पर्यावरण असन्तुलन पर भी मौन नहीं है। यदि हम अपने निजी स्वार्थो हेतु प्रकृति का अंधाधुंध दोहन करते रहेंगे तो एक दिन प्रकृति की सहनशीलता समाप्त हो जायेगी। प्रकृति का सामान्य सा भ्रूभंग भी संसार को प्रलययुक्त करने के लिए पर्याप्त है। प्रकृति के इस भयंकर और विध्वंशक रूप की ओर संकेत करते हुए छायावादी कवि जयशंकर प्रसाद कामायनी के ''आशा सर्ग'' में लिखते हैं–

करका क्रन्दन करती गिरती, और कुचलना था सबका।

पंचभूत का यह ताण्डवमय , नृत्य हो रहा था कबका।

विकल हुआ सा कांप रहा था, सकल भूत चेतन समुदाय।

उनकी कैसी बुरी दशा थी, वे थे विवश और निरूपाय।

यह पृथ्वी हम सबकी माता है। जहां हम शान्ति एवं सुख से तभी तक रह सकते हैं जब तक हम यहां पर्यावरण सन्तुलन को बनायें रखें। ऋग्वेद तथा अथर्ववेद पृथ्वी की मंगल कामना तथा इसके पर्यावरण शुद्धि हेतु कृतसंकल्प से प्रतीत होते हैं।

अथर्ववेद में पृथ्वी के धैर्य तथा स्थिरता की प्रशंसा करते हुए कहा गया हैः–

जनं, विभ्रती , बहुधा, विवाचसमं, नानाधर्माण, पृथिवी , यथौकसम।

सहस्त्रं धारा द्रविणस्य में दुहां ध्रुवेव धेनुरनपरस्फुरन्ती।

अर्थात, ''घर के समान विभिन्न धर्मों को मानने वाले, अलग, अलग भाषा बोलने वाले लोगों को बहुत प्रकार से धारण करती हुई, पृथ्वी स्थिर तथा अचंचल गऊ की तरह मेरे लिए धन धान्य की हजारों धारायें दुहे ।''

मेघदूत में महाकवि कालिदास ने मेघ की इसी महत्ता को समझकर उससे भातृत्व सम्बन्ध स्थापित किया है। यदि इस गूढ़ रहस्य को न समझकर इसके स्वरूप धूम, ज्योति, सलिल एवं मारूत को प्रदूषित होने से नहीं बचाया गया तो वर्षा जल अमलीय हो जायेगा। जिससे उसका रासायनिक सन्तुलन परिवर्तित हो जायेगा। जो मानव ही नहीं सतत् प्रकृति के विनाश का कारण होगा। भौतिकता में निमग्न आज का मानव स्वार्थ के वशीभूत एवं अपने परिवेश के प्रति संवेदन शून्य हो गया है। पर्यावरण संरक्षण की प्राचीन मान्यताओं को अज्ञानवश या आधुनिकतावाद के कारण न समझकर विनाश के दलदल में धंसता जा रहा है। वनों की आंख मूंदकर कटाई से , जल को स्वार्थवश मलिन करने से , वायु को कार्बन उर्त्सजन से तथा मृदा को विभिन्न अपशिष्ट पदार्थों से दूषित कर मानव ने पर्यावरण की मूलभूत अवधारणा तथा पर्यावरण सन्तुलन के आधार को डगमगा दिया है। इन सबके मूल में एक ही भयावह कारण है जनसंख्या वृद्धि ।

आबादी के बढ़ने से अन्य उत्पादन बढना चाहिए एवं आवासीय भूमि भी। खाद्यान्न उत्पादन आधुनिक वैज्ञानिक विधियों से बढाया जा रहा है। जिससे तात्कालिक

राहत अवश्य मिल रही है, किन्तु उपभोक्ता एवं मिटटी की अन्तः शक्ति क्षीण हो रही है। यदि आवास योग्य भू–भाग में ही आबादी को रखा जाये तो एक बाड़े में अनेक पशुओं को रखने जैसी स्थिति हो जायेगी। ऐसी स्थिति में एक ही विकल्प बचता है। वनों का कटाव एवं पहाडों को समतल बनाना। इससे प्रकृति एवं पर्यावरण दोनों ही प्रभावित होंगे। यदि जंगल कटेंगे तो वर्षा घटेगी, आबादी बढेगी तो उद्योग बढेंगे। जिससे प्रदूषण बढेगा।

साख्यिकी आंकडों के अनुसार वर्ष 2011 में भारत की जनसंख्या लगभग सवा अरब हो चुकी है। जनसंख्या वृद्धि में पर्यावरण प्रदूषण का मुख्य कारण है। जिस पर दृढ संकल्पों के साथ नियंत्रण अत्यन्त आवश्यक है। पर्यावरण संरक्षण के लिए हमें अपने अतीत का ध्यानपूर्वक चिन्तन करना होगा। हमें वैदिक कालीन प्रकृति शोधक नियमों का पालन करना होगा तथा प्रकृति का स्वार्थवश दोहन न कर उससे मित्रवत व्यवहार करना होगा। प्रकृति के अनुसार आचरण करके ही हम पर्यावरण को सुरक्षित कर सकते हैं और पर्यावरण सुरक्षित होगा तभी हमारा जीवन भी सुरक्षित रह पायेगा।

सन्दर्भ सूची

सुमित्रा नन्दन पन्त– ''मोह''

जयशंकर प्रसाद–''कामायनी'' (आशा सर्ग)

अथर्ववेद –12.1.45